प्रवचन-५५, गाथा-५०, मंगलवार, श्रावण शुक्ला ८ दिनांक ०२-०९-१९८०

नियमसार ५०वीं गाथा, हिन्दी में टीका। गाथा फिर से लेते हैं।

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सग-दव्व-मुवादेयं अंतर-तच्चं हवे अप्पा।।५०।।

पर-द्रव्य हैं परभाव हैं पूर्वोक्त सारे भाव ही।
अतएव हैं ये त्याज्य, अन्तस्तत्त्व हैं आदेय ही॥५०॥

सूक्ष्म अधिकार है, मूल अधिकार है। परमात्मा सर्वज्ञदेव तीर्थंकरदेव के अन्तर के पेट की बात है। जो अनादि काल का सनातन धर्म क्या है? वह बात है।

टीका:—यह, हेय-उपादेय... छोड़नेयोग्य - आदरनेयोग्य **अथवा त्याग-ग्रहण के स्वरूप का कथन है।** त्याग का अथवा ग्रहण का अथवा हेय का, छोड़ने का और आदरने का, यह अधिकार इसमें है। **जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं,...** आहाहा! कठिन बात है। आत्मा में चार प्रकार की पर्यायें होती हैं। एक दया, दान, व्रत, भक्ति का उदयभाव, एक उसका उपशमभाव, राग का उपशम-दबना, एक क्षयोपशमभाव, एक क्षायिकभाव, ये चार भाव आत्मद्रव्य की चार पर्यायें हैं। आत्मद्रव्य की चार पर्यायें / अवस्थाएँ हैं। यह कहते हैं कि **जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं,...** ये चार पर्यायें। आहाहा! कठिन बात है।

वे पहले (४९वीं गाथा में) व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं, ४९ (गाथा) में किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से... परन्तु अन्तर के आत्मस्वभाव की शक्ति के बल से अथवा शुद्धचैतन्य को प्राप्त करने के बल से वे चार पर्यायें हेय हैं। आहाहा! उदयभाव तो हेय है ही। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा यह सब राग तो बन्ध का कारण हेय है ही। परन्तु उसका उपशम होना। जैसे पानी में मैल नीचे बैठ जाये और पानी स्थिर हो, वैसे विकार का मैल नीचे बैठ जाये और उपशम हो जाये, वह उपशमभाव भी यहाँ तो हेय है, त्यागने योग्य है। हेय है, वह त्यागनेयोग्य है। आहाहा!

जिसे आत्मज्ञान प्रथम सम्यग्दर्शन, धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म की पहली श्रेणी, अनन्त काल में नहीं बनी हुई अपूर्व, ऐसी दृष्टि करनी हो, उसे उदयभाव, उपशमभाव और ज्ञान के क्षयोपशम में उघाड़ भाव और किंचित विघ्न; और केवलज्ञानादि क्षायिकभाव या क्षायिक समकित आदि, ये चारों भाव... आहाहा! **व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं, किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं।** आहाहा! कठिन बात है। ५० गाथा। कल तो बहुत चला था। समझ में आया?

अन्दर एक पंचम पारिणामिकस्वभावभाव, ध्रुवभाव, अनादि-अनन्त, सनातन नित्य भाव एक ही सम्यग्दृष्टि को उपादेय है। जिसे धर्म की पहली सीढ़ी प्रगट करनी हो तो उसे अनादि-अनन्त चैतन्यस्वरूप जो शुद्ध पारिणामिकस्वभाव, जो ज्ञायकभाव, त्रिकाली ज्ञायकभाव, वह एक ही आदरणीय है। दृष्टि वहाँ करनेयोग्य है। आहाहा! कठिन बात है।

यह शरीरादि तो जड़ मिट्टी है। हलन-चलन की क्रिया होती है, वह सब जड़ की (क्रिया) है। आत्मा कभी जड़ में कुछ नहीं कर सकता। जड़ को स्पर्श भी नहीं करता न! आहाहा! समयसार की तीसरी गाथा (में कहा है कि) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी स्पर्श नहीं करता। हमारी गुजराती भाषा में अड़ते नथी (ऐसा कहते हैं)। यहाँ कहते हैं स्पर्श नहीं करता। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! गजब बात है। यह अंगुली अनन्त परमाणुओं का पिण्ड है। इसमें एक-एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं किया है। आहाहा! क्योंकि द्रव्य, वस्तु अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में अस्ति रखती है। पर के कारण उसकी अस्ति किंचित् नहीं है।

प्रत्येक पदार्थ, परमाणु या आत्मा अपना त्रिकाली द्रव्य वस्तु, उसकी शक्ति जो गुण, ज्ञान, दर्शन आदि और उसकी पर्याय अवस्था वर्तमान हालत, विचार, इतन तीन में इसका अस्तित्व है। इन तीन में उसकी मौजूदगी है। वह मौजूदगी दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! कहो, बलुभाई! यह कभी सुना था? तब लंघन किया था। वर्षीतप किया था। आहाहा! अरे प्रभु! मार्ग अलग है, प्रभु! वीतराग तीन लोक के नाथ परमेश्वर महाविदेह में विराजमान हैं। बीस तीर्थंकर, लाखों केवली विराजते हैं। ऐसे अनन्त तीर्थंकर हुए, अनन्त तीर्थंकर होंगे, अनन्त केवली होंगे, अनन्त सन्त सच्चे मुनि जैनदर्शन के होंगे, उन प्रत्येक का यह कथन है। यह कथन है। आहाहा!

शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, लक्ष्मी, परिवार, वह तो भिन्न है। वे तो आत्मा की

पर्याय में भी नहीं। क्या कहा ? आत्मा की जो अवस्था-पर्याय, पलटती दशा है, उसमें वे नहीं। पर, वह संसार नहीं। स्त्री, कुटुम्ब, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति वह संसार है नहीं। संसार आत्मा की पर्याय में द्रव्य-गुण शुद्ध से संसरण-हटकर विकार में रहना, वह संसार है। आहाहा! बात कठिन है, भाई! कभी सुनी नहीं, की नहीं।

चौरासी के अवतार करते-करते अनन्त काल चला गया है। चौरासी लाख योनि। एक आत्मज्ञान बिना, आत्मदर्शन, समकित बिना एक-एक योनि में अनन्त बार अवतार धारण किये। बाकी सब क्रिया तूने की है। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' मुनिव्रत धारण किया, दिगम्बर नग्न मुनि हुआ, जंगल में बसा और 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना...' भगवान सच्चिदानन्द प्रभु जिनेश्वर परमेश्वर ने जो आत्मा आनन्दकन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का दल, अतीन्द्रिय ज्ञान का कश, अतीन्द्रिय शान्ति का सागर, ऐसा जो प्रभु आत्मा भगवान ने देखा है। उस आत्मा को अनन्त काल में कभी एक सेकेण्ड भी स्पर्श नहीं किया। आहाहा! पर्यायदृष्टि में रहा। पर्याय अर्थात् वर्तमान अवस्था, बदलती पर्याय विचारणा। इसके अतिरिक्त ध्रुवस्वरूप जो त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उस ओर तो एक समय भी झुकाव किया नहीं।

यह कहते हैं, **शुद्धनिश्चयनय के बल से...** त्रिकाली ज्ञायकभाव के ज्ञान के बल से। आहाहा! व्यवहारनय से उसके हैं, ऐसा कहा था, आत्मा के हैं व्यवहार से परन्तु निश्चय अन्तर त्रिकाली सत्यार्थ, वास्तविकता, त्रिकालता और त्रिकाली रहनेवाला सत्य, उस दृष्टि से देखो तो वह **शुद्धनिश्चयनय के बल से (शुद्धनिश्चयनय से) वे हेय हैं।** वे चारों भाव हेय हैं। आहाहा! गजब बात है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने मेरे लिये बनाया है। यह पुस्तक (ग्रन्थ) मैंने मेरे लिये बनाया है। समयसार, प्रवचनसार आदि तो उपदेशरूप से सबके काम आवे, ऐसा बनाया है। यह पुस्तक भी काम आवे, इसलिए बनायी है, परन्तु मैंने तो मेरे लिये बनायी है। आहाहा! अन्तिम गाथा में है कि मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है। आहाहा! अरे रे! इन्होंने क्या किया ?

एक आत्मा की उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय, वह पर्याय भी आदरणीय नहीं है। क्यों ? उस पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती। आहाहा! नयी पर्याय शुद्ध निर्मल वीतरागी आनन्द की दशा, द्रव्य में से आती है। इस कारण उस पर्याय को हेय कहा है। आहाहा! ऐसी बात है। कठिन बात है। किसी को तो ऐसा लगे कि यह निकाला कहाँ से ?

ऐसा नया मार्ग कहाँ से निकाला ? अरे ! प्रभु ! ये शास्त्र तो अनादि के हैं, महावीर भगवान के समय के हैं। यह तो कुन्दकुन्दाचार्य ने बनाये तब के हैं। आहाहा ! इसमें नियमसार की ५० गाथा (चलती है)।

नियम ऐसा है कि, नियम ऐसा है कि, इस नियम का सार, कि पर्याय में चार प्रकार की पर्याय होती है। उसकी स्थिति एक समय की है। राग हो तो भी एक समय रहे, उपशमभाव भी एक समय रहे, क्षयोपशमभाव भी एक समय रहे, अरे ! क्षायिक केवलज्ञान भी एक समय रहे। केवलज्ञान एक समय रहे, दूसरे समय में वह केवलज्ञान न रहे। केवलज्ञान, दूसरे समय दूसरा। वैसा, परन्तु वह नहीं। आहाहा ! कठिन बात है, प्रभु ! जैनमार्ग ऐसा कठिन है। सब परम्परा टूट गयी। बाहर में चार गति में भटकने का मार्ग रह गया। आहाहा ! पुण्य की क्रिया करो और मोक्ष जाओगे। दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो, पूजा करो, मन्दिर बनाओ - जाओ, मोक्ष होगा। कहाँ गये ? आहाहा !

यहाँ परमात्मा त्रिलोकनाथ का कहा हुआ, कुन्दकुन्दाचार्य ने सीधे सुना हुआ, वे जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। अपने हित के लिये बनाया हुआ। यह पुस्तक (ग्रन्थ) अपने हित के लिये बनायी है। वह जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। प्रभु ! तुझमें दो प्रकार है। कोई शरीर, वाणी, मन, कर्म-फर्म वह तो आत्मा को स्पर्श नहीं करते। कर्म जड़ हैं, उन्हें आत्मा स्पर्श नहीं करता। आत्मा अरूपी है। कर्म जड़ रूपी है। शरीररूपी को आत्मा स्पर्श नहीं करता। स्पर्श नहीं करता। यह बात कैसी ? अरे ! वह आत्मा को तो स्पर्श नहीं करता, परन्तु उसमें जो अनन्त परमाणु हैं, वे एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करते। एक-एक परमाणु अपने अस्तित्व में है। दूसरे परमाणु अपने अस्तित्व की अस्ति में है। पर की अस्ति को स्पर्श नहीं करते। आहाहा ! ऐसा कठिन काम है। प्रभु ! मार्ग तो ऐसा है। दुनिया को बैठे, न बैठे। दुनिया विरोध करे। उसे न बैठे तो विरोध करे।

मुमुक्षु : अज्ञानी लोग करे...

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी को वस्तु की खबर नहीं है। यह भगवान अन्दर है, परन्तु इसकी उसे खबर नहीं है।

यहाँ ऐसा कहते हैं कि ये चार भाव हेय हैं। आहाहा ! अरे ! क्षायिकभाव, क्षायिक समकित भी पर्याय है न ? और यहाँ साधक, (को) केवलज्ञान तो है नहीं। तो केवलज्ञान

का-पर का लक्ष्य करे तो राग उत्पन्न होता है। आहाहा! इस कारण से अपने अस्तित्व में दो प्रकार, पर के अस्तित्व की तो बात ही नहीं है। शरीर, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, वह तो पर का अस्तित्व है। अपने को और उसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! अपनी अस्ति और पर की अस्ति को कुछ सम्बन्ध नहीं है। पर की अस्ति उसके कारण से है और अपनी अस्ति अपने कारण से है। आहाहा! अरे रे! प्रभु! ऐसी सूक्ष्म बात है, प्रभु!

कहते हैं कि पर की अस्ति की तो हम यहाँ बात ही नहीं करते क्योंकि पर की अस्ति में अपनी अस्ति को कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! परन्तु अपनी अस्ति में दो प्रकार हैं। आत्मा की अस्ति में दो प्रकार हैं। एक वर्तमान पर्याय प्रकार—दया, दान, व्रतादि का उदयभाव, वह राग को मन्द करना अथवा दबाना, नीचे रहना, कुछ उघाड़ ऊपर शान्ति होना, वह उपशमभाव; क्षयोपशम अर्थात् ज्ञान में उघाड़ होना, कुछ विघ्न रहना, कुछ उघाड़ और क्षायिकभाव विघ्नरहित पर्याय। ये चारों पर्यायें आत्मा में नहीं हैं। पर्याय में है, वे हेय हैं। आहाहा! ऐसी बात! स्त्री, पुत्र की तो बात ही नहीं। वह तो उनका द्रव्य उनके कारण से आकर उनकी अस्ति से रहा है। वह कहीं तेरी अस्ति से उनकी अस्ति नहीं रही है। आहाहा! इस शरीर के अस्तित्व की, उसके कारण अस्ति द्रव्य-गुण-पर्याय उसके, उसके कारण उसकी अस्ति है। यह हलन-चलन होना, वह आत्मा से नहीं होता। उसकी अस्ति से उसका हलन-चलन है। आत्मा से बिल्कुल नहीं। आहाहा! तुम्हारे पैसे कहाँ गये इसमें? ये सब करोड़पति। धूलपति धूल। वह धूल तो अजीव है। अजीव की सत्ता में जीव की सत्ता का प्रवेश नहीं है और अजीव की सत्ता जीव की सत्ता को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! यह क्या कहते हैं?

भगवान! भगवान तीन लोक के नाथ ने यह कहा है। परमात्मा विराजते हैं। आहाहा! उन्होंने कही हुई यह बात है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे, आठ दिन रहे थे। ओहो! साक्षात् परमात्मा की वाणी आठ दिन सुनी और कितनी ही बातें छद्मस्थ श्रुतकेवली जो थे, परन्तु श्रुत में पूरे, उनके साथ चर्चा करके कितने ही निर्णय किये थे, वह सब लेकर यहाँ आये। आकर यह शास्त्र बनाया। आहाहा!

प्रभु! एक बार सुन न! तेरी अस्ति पर की अस्ति के कारण है? शरीर की अस्ति के कारण तेरी अस्ति है? इस वाणी की अस्ति के कारण तेरी अस्ति है? और वाणी की अस्ति तेरी अस्ति के कारण है? आहा..! यह वाणी है, वह जड़-मिट्टी परमाणु की पर्याय

है। उसकी अस्ति तेरे कारण नहीं। इसी प्रकार इस शरीर की हलन-चलन आदि क्रिया, वह तेरे कारण नहीं है। वह जड़ की अस्ति के कारण, उसकी अस्ति के कारण, उसके अस्तित्व के कारण, उसकी मौजूदगी के कारण, उसकी क्रिया जड़ में उसके कारण होती है। आत्मा से बिल्कुल नहीं होती। आहाहा!

मुमुक्षु : पैसा कमाने का काम आत्मा करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा कौन कमाये? धूल। पैसा जड़-मिट्टी। आहा..हा..! हमने भी पाँच वर्ष दुकान में धन्धा किया था न, पालेज में बड़ी दुकान चलती है। चालीस लाख रुपये हैं। चार लाख की आमदनी है, तीन लड़के हैं, परन्तु इस वर्ष बँटवारा कर दिया। नहीं तो तीन लड़के, बुआ के लड़के भागीदार थे। हम दो थे और वे दो थे और दो दुकानें थीं। उसमें (संवत्) १९६३ से १९६८ तक तो मैंने दुकान चलायी है। पिताजी थे। उमराला से १९५९ के वर्ष में वहाँ गये थे। छप्पनियाँ (दुष्काल) के बाद गये थे। पिताजी चार वर्ष रहे (संवत्) १९६३ के वर्ष में गुजर गये। १९६३ से १९६८ के वर्ष तक भागीदार के साथ मैंने दुकान चलायी। पाँच वर्ष चलायी थी। अभी वह दुकान तो बड़ी हो गयी है। चालीस लाख रुपये, चार लाख की आमदनी। लड़के मनसुख और वे आये थे। अरे! धूल में। यहाँ कौन कमावे और कौन कमावे? किसके पैसे? किसके पैसे?

प्रभु! पैसा अस्तिवाली चीज़ है या अनअस्तिवाली? तो अस्तिवाली चीज़ तेरे कारण है या उसके कारण है? आहाहा! अरे रे! तूने न्याय से बात नहीं सुनी, प्रभु! आहाहा! पैसे की अस्ति उसके द्रव्य-गुण-पर्याय की अस्ति के कारण है या तेरे कारण है? इस स्त्री की अस्ति, तेरी स्त्री तू जो मानता है, मानता है; है नहीं। आत्मा को स्त्री नहीं है। स्त्री की अस्ति उसके द्रव्य-गुण-पर्याय में उसकी अस्ति उसके कारण है। उसके पास जो कर्म है, वह कर्म की अस्ति कर्म के कारण है, आत्मा के कारण नहीं। आहाहा! रामजीभाई को एक ही लड़का है, इसलिए ऐसे प्रश्न करते हैं। एक ही लड़का है न? सुमनभाई! महीने में आठ हजार का वेतन है। मुम्बई! अमेरिका भेजा था। पाप करके (पैसा) पैदा किया था और पैंतीस हजार खर्च करके लड़के को पढ़ाया। पाप करके किया था और पाप करके दिया। उस लड़के का क्या, ऐसा पूछते हैं। वह लड़का उसकी अस्ति में उसके कारण से है। इसके कारण उसकी अस्ति नहीं है और उसकी अस्ति के कारण इसकी अस्ति नहीं है। आहाहा!

अरे परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव, उन्हें कौन सुनेगा? उनका नाद कौन झेलेगा? उनके नाद को कौन हाँ करेगा? आहाहा! दुनिया पागल, अज्ञान में पागल हुई। आहाहा! उसमें यह बात... आहाहा! एक-एक रजकण, उसकी अस्ति के कारण है। उसके कारण है। अंगुली की अस्ति के कारण यह नहीं और इसके कारण वह नहीं। आत्मा के कारण उसकी (पुद्गल की) अस्ति नहीं। वह तो मिट्टी है। मिट्टी अस्ति-मौजूदगी उसके कारण, जड़ के कारण है; आत्मा के कारण बिल्कुल नहीं। आहाहा! इसलिए उसकी बात तो यहाँ की नहीं कि शरीर, वाणी, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा वह हेय है, यह बात यहाँ नहीं की, क्योंकि इसमें है नहीं तो फिर हेय किसे? हेय तो अपने में हो, हो उसे हेय कर सकते हैं परन्तु पर का हो, उसमें पर में हेय-उपादेय कहाँ? पर तो पर की चीज़ है। आहाहा! समझ में आया?

पर की चीज़ तो पर के कारण, स्वयं की अस्ति के कारण है तो उसका त्याग-ग्रहण आत्मा में नहीं है। आत्मा में एक त्याग-उपादान नाम का गुण है, एक शक्ति है। आत्मा में त्याग-उपादान। तो एक भी रजकण का त्याग और एक भी रजकण का ग्रहण, उससे प्रभु रहित है। अरे रे! वलुभाई! अरे! भगवान का नाद कौन सुनेगा? अरे! जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ...। श्रीमद् एक बार कहते थे कि अरे रे! मेरी यह बात कौन सुनेगा? यहाँ तो तीन लोक के नाथ, दिव्यध्वनि द्वारा बात आयी, वह कहे, दिव्यध्वनि की अस्ति मेरे कारण नहीं है। आहाहा! यह आवाज निकलती है, वह जड़ की। उस जड़ की अस्ति जड़ के कारण से है, स्वयं के कारण से; आत्मा के कारण से नहीं। आहाहा! यहाँ तो कहे, दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो और यह करो। अरे! भगवान! कदाचित् उसमें राग की मन्दता करो तो पुण्य होगा और उस पुण्य से चार गति में भटकने का बनेगा। आहाहा! वह पुण्य स्वयं संसार है। आत्मा त्रिकाली आनन्द का नाथ, उसमें 'संसरणं इति संसारः' उसमें से हटकर, त्रिकाली में से हटकर विकार में आया, वह संसरणं इति संसारः - वह पर में आया, यह तो बात ही नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

यह तुम्हारा कारखाना चलता है न? क्या कहलाता है वह? एक बार गये थे। स्टील-स्टील। स्टील का बड़ा कारखाना है। ....लोहे का, हमारे क्या करना है कहा। स्टील का कारखाना है। काँप में। धूल का कारखाना उसके कारण चलता है, वह कारखाना मनुष्य के कारण भी नहीं, चन्दुभाई के कारण तो नहीं ही।

मुमुक्षु : .....पैसा तो हमको मिलता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा ! अरे ! किसे पैसा मिले ? प्रभु ! पैसा, वह कोई चीज़ है या नहीं ? तो वह चीज़ इस चीज़ को मिले या स्पर्शे ? प्रभु ! यह बात दूसरी है, जगत से न्यारी है। वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेश्वर का मार्ग दुनिया से अत्यन्त न्यारा है। इस लक्ष्मी को आत्मा स्पर्श नहीं करता तो इसे लक्ष्मी कहाँ से मिली ? तब मिला क्या ? कि उसके आने पर इसे ऐसा लगा कि मेरी है, ऐसी ममता इसे मिली। वह ममता इसकी पर्याय में स्वयं की है। वह लक्ष्मी ने नहीं करायी है। आहाहा ! बात-बात में अन्तर ! दुनिया के साथ... दुनिया में रहना और दुनिया से अन्तर। दुनिया में कहाँ रहता है ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि तेरी अस्ति में वह लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मकान, इज्जत, वस्त्र, वह तेरी अस्ति के कारण है ही नहीं; इसलिए उनकी तो हम बात करते नहीं कि वे छोड़ने योग्य हैं और ग्रहण करनेयोग्य तेरी चीज़ है। वह तो आत्मा के गुण में नहीं। आत्मा का एक ऐसा गुण है - त्याग-उपादानशून्यत्वशक्ति। एक रजकण से लेकर दाल, भात, रोटी, सब्जी, वस्त्र, पैसा, उसका त्याग और उसका ग्रहण, उससे आत्मा शून्य है। आहाहा ! अरे रे ! इस बात को झेले, प्रभु ! तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव, अनन्त तीर्थंकरों का यह नाद है। अरे ! अभी यह सब छिन्न-भिन्न हो गया है। अभी कहीं न कहीं (किसी न किसी) नाम से लोग बेचारे भटक मरते हैं। आहाहा !

भगवान त्रिलोक के नाथ, अनन्त तीर्थंकरों की यह आवाज है। आहाहा ! यह आवाज, उनका कहना, यह भी निमित्त से है। आहाहा ! आवाज, आवाज से है। वह आवाज आत्मा से नहीं, परन्तु उस आवाज में ऐसा आया.. आहाहा ! कि तेरी अस्ति में दो बातें हैं। तू आत्मा है न, प्रभु ! तो तुझमें दो बातें हैं। एक त्रिकाली द्रव्य है और एक वर्तमान पर्याय / अवस्था है। बदलती अवस्था और एक त्रिकाली ध्रुव, यह दो अस्ति तुझमें है। तुझमें दो अस्ति के अतिरिक्त तीसरी कोई अस्ति नहीं है। आहाहा ! अब इसकी पर्याय की जो अस्ति, इसकी अवस्था जो है। जो ऐसे विचार चलें, बदलें, उस अस्ति के चार प्रकार हैं। उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव और क्षायिकभाव। इसकी अस्ति की पर्याय में चार भाव। जो पर की अस्ति के कारण नहीं है, जो पर की अस्ति में नहीं है। वे चार भाव भी हेय हैं। आहाहा ! छोड़नेयोग्य हैं। जिसे धर्म करना हो, जिसे सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली सीढ़ी, पहला सोपान करना हो उसे; तेरी अस्ति के अतिरिक्त के त्याग-ग्रहण की

बात यहाँ है ही नहीं, क्योंकि पर के त्याग-ग्रहण से तो तू त्रिकाल शून्य है। पर के त्याग और ग्रहण से तो त्रिकाल शून्य है। आहाहा! रजनीभाई! क्या यह तुम्हारे पैसे-वैसे धूल।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग कहते हैं, उस एक-एक लड़के को करोड़-करोड़ रुपये हैं, ऐसा कहते हैं। यह बात सुनी है। मकान देखने गये थे। पोपटभाई के पास रहते थे, मकान बनाया है। जमीन ली है। लड़के कभी निवृत्त होकर नम्बर से आते हैं। आहाहा!

अरे! भगवान! तेरी अस्ति में जो चीज़ नहीं, उसके ग्रहण-त्याग की यहाँ बात नहीं है, क्योंकि तू पर के ग्रहण-त्याग से रहित है। अब बात रही तेरी पर्याय-अवस्था, वह तेरी अस्ति, तेरी दशा में राग, द्वेष, दया, दान, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव, वह तेरी पर्याय में, अस्ति में है। वह अस्ति हेय है। उस पर नजर रखने की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! उस पर नजर रखने से तो राग होगा और संसार में परिभ्रमण करेगा। आहाहा! चिमनभाई! इसमें कहाँ तुम्हारी मुम्बई की धमाधम। आहाहा! धमाल.. धमाल.. धमाल..

अरे! प्रभु! तेरी मौजूदगी में, तेरी अस्ति में, आत्मा में द्रव्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु, गुण अर्थात् ज्ञान-दर्शन आदि शक्ति, और पलटती अवस्था, ये तीन तेरी अस्ति में है। तीन के अतिरिक्त चौथी चीज़ तेरी अस्ति में नहीं है। आहाहा! यह बात पागल लगे ऐसी है। पागल को पागल लगे, ऐसा है। पूरी दुनिया पागल है। आहाहा! बलुभाई! ये सब बुद्धिवाले कहलाते हैं, वे सब पागल हैं। आहाहा! तीन लोक के नाथ पागल कहते हैं। परमात्मप्रकाश में पाठ है कि दुनिया सत्य कहनेवाले को पागल कहती है और सत्य कहनेवाला दुनिया को पागल मानता है। आहाहा!

यहाँ दो बातें हुई। एक तो आत्मा में द्रव्य-वस्तु, गुण-शक्ति, ज्ञान-दर्शन आदि और उसकी बदलती अवस्था, इन तीनों में इसकी अस्ति है। बाकी बाह्य चीज़ में इसकी अस्ति नहीं है और बाह्य चीज़ के कारण इसकी अस्ति नहीं है और इसके कारण बाह्य चीज़ की अस्ति नहीं है। अब इसकी पर्याय में चार प्रकार की पर्याय की अस्ति है। आहाहा! उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव। चार भाव भी सुने नहीं होंगे। अरे रे! ये चार भाव भी... कहा न?

शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं। आहाहा! पर की तो बात कहाँ करनी? स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मकान, धूल; धूल अर्थात् पैसा। आहाहा! वे तो उनकी अस्ति से वहाँ रहे

और उनकी अस्ति से जाते हैं। तेरे प्रयत्न से आवे और जावे, यह बात तीन काल में सत्य नहीं है। आहाहा! तेरी अस्ति में तो राग और द्वेष विकार हो, या धर्म की उपशम, क्षयोपशम, और क्षायिक पर्याय हो। इस त्रिकाली द्रव्य के अवलम्बन से (हो), तथापि वह पर्याय हेय है। क्यों?—कि वह पर्याय-अवस्था जो है, उसमें से नयी अवस्था उत्पन्न नहीं होती। नयी अवस्था में से अवस्था उत्पन्न नहीं होती। अवस्था / पर्याय, द्रव्य-त्रिकाली द्रव्य भगवान आत्मा अनादि सनातन सत् प्रभु में से पर्याय आती है। पर्याय में से पर्याय नहीं आती। इस कारण चार प्रकार की पर्याय को भी हेय कहा गया है, उसकी दृष्टि छोड़ दे। भगवान पर दृष्टि कर। त्रिकाल परमात्मस्वरूप भगवान, पंचम भाव, इन चार भाव से भिन्न। चार भाव पर्याय के हैं और पंचम भाव द्रव्य का, वस्तु का है। ज्ञायकभाव। ज्ञायक... आहाहा!

किस कारण से ? हेय है। है शब्द? हेय कहा, वह किस कारण से है। कारण बिना कार्य होता नहीं। अपनी पर्याय अवस्था में जो चार भाव होते हैं, वे नजर में से छोड़ने योग्य है। वहाँ नजर रखने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उनके लक्ष्य से राग होता है। आहाहा! **किस कारण से? क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** आहाहा! है? आहाहा! प्रभु.. प्रभु.. प्रभु! अनन्त तीर्थंकर हो गये, होते हैं और होंगे। उनका यह भाव है, उनका यह भाव है। परन्तु इस जगत को यह बैठना (समझ में आना कठिन पड़ता है)। सुनना कठिन पड़ता है। सुनने को ही मिलता नहीं। यह करो.. यह करो.. दया पालो, व्रत करो, रात्रिभोजन नहीं करो, छह परबी व्रत पालो, परबी कन्दमूल न खाओ, ऐसी सब बातें। आहाहा! जो परद्रव्य का ग्रहण-त्याग कर नहीं सकता, उसकी बातें। आहाहा!

तेरी पर्याय में.. अभी कितने ही तो पर्याय को भी नहीं समझते होंगे। तेरी चीज़ जो शाश्वत चीज़ नित्य है, वह द्रव्य है और पलटती अवस्था बदलती है, वह पर्याय है। उस पर्याय में चार भाव होते हैं, तो चार भाव हेय हैं। **किस कारण से? क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** आहाहा! लो, यह हिन्दी में आया? होवे वह आवे न? दुनिया मानो, न मानो। चौरासी के अवतार कर-करके अनादि से भटक रहा है। बापू! एक-एक नरक, एक-एक नरक में अनन्त-अनन्त अवतार किये हैं। पहले नरक की दस हजार वर्ष की स्थिति है। पहला नरक रत्नप्रभा... आहाहा! रत्नप्रभा नाम है।

एक साधु ने एक बुढ़िया से पूछा था कि बुढ़िया! रत्नप्रभा जाना है? अरे! माँ-बाप! हम जायेंगे? तुम्हारे जैसे जायें रत्नप्रभा। उसे ऐसा कि रत्नप्रभा अर्थात् मानो क्या होगा?

परन्तु पहले नरक का नाम रत्नप्रभा है। आहाहा! साधु ने कहा कि बुढ़िया! तुम्हें रत्नप्रभा में जाना है? महाराज! हमारे जैसे प्राणी रत्नप्रभा नहीं जाते, आपके जैसे जाते हैं। अर र! उसे अभी रत्नप्रभा किसे कहना, कहाँ है? उसकी भी खबर नहीं होती। आहाहा! और सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण करके माने कि धर्म हो गया। वहाँ धूल में भी धर्म नहीं। धूल में भी नहीं अर्थात् क्या? कि उसे साधारण पुण्य बँधे धूल। वह चार गति में भटकने के लिये पुण्य है। आहाहा!

किस कारण से? हेय है? प्रभु! परन्तु अपनी पर्याय में है और हेय है? अपने में है नहीं, ऐसे शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, इज्जत, कीर्ति, मकान, वह तो अपने में नहीं, वे तो परचीज़ हैं। उनके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है, परन्तु अपनी पर्याय में है, उसे हेय क्यों कहा? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। है न? **किस कारण से?** आहाहा! अपनी अवस्था में होनेवाली पर्याय राग, द्वेष, दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा.. अरे! उनसे रहित परन्तु उपशमभाव, धर्म भाव... आहाहा! वह भी हेय छोड़नेयोग्य है, प्रभु!—ऐसा आप किस कारण से कहते हो? कारण क्या है? कारण है, प्रभु! **क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** आहाहा! प्रभु! वे परस्वभाव हैं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, विकार तो परस्वभाव है ही, परन्तु उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव को परस्वभाव कहा। पर्याय को परस्वभाव कहा। आहाहा! अरे रे! इसने कभी जिन्दगी में सुना भी नहीं होगा और यह जिन्दगी चली जा रही है। कहाँ अवतार होगा? सत्ता तो रहनेवाली है। आत्मा की सत्ता तो अनादि-अनन्त सत्ता है। वह (शरीर) छूट जायेगा, इसकी (आत्मा की) सत्ता तो रहेगी। कहाँ रहेगी? आहाहा! कहाँ जायेगा? भटकता राम कहीं सूकर में, कौवे में, कुत्ते में, नरक में (रहेगा)। आहाहा! ऐसे अनन्त-अनन्त भव किये। सत्य को समझा नहीं, सत्य की शरण में गया नहीं। आहा!

यहाँ कहते हैं कि वे चार भाव भी तेरा त्रिकाली सत्व नहीं है। **क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** हेय है? किस कारण से हेय है? **क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** आहाहा! दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा तो परस्वभाव है ही परन्तु उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव परस्वभाव है। वह आत्मा का त्रिकाली स्वभाव नहीं। आत्मा त्रिकाली टिकती चीज़, उसमें वे (पर्यायें) टिकती चीज़ नहीं। वे तो एक समय टिकती हैं। आहाहा! धर्म की दशा प्रगट हो, वह भी एक समय टिकती है। आहाहा! त्रिकाली के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हो, उसकी स्थिति भी एक समय की है। दूसरे समय दूसरा, तीसरे समय तीसरा, ऐसे पर्याय बदलती है और त्रिकाली चीज़ ध्रुव है। आहाहा! यह उपजे-विनशे, उस पर्याय के पीछे, उसके

तल में, पर्याय के तल में ध्रुव भरा है। आहाहा! अरे! भगवान! ऐसी बात कहाँ से... ? त्रिलोक के नाथ की बात है। आहाहा!

किस कारण से ? क्योंकि वे परस्वभाव हैं और इसीलिए परद्रव्य हैं। पर्याय को परद्रव्य कहा, प्रभु! परवस्तु, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति नहीं। उसके साथ तुझे कुछ सम्बन्ध नहीं। वह तो उसके कारण से आवे, उसके कारण से रहे, उसके कारण से जाये। तेरे कारण से आवे नहीं, तेरे कारण से रक्षा - रक्षा रहे नहीं और तू देने जाये तो दे सके नहीं। वह तेरी शक्ति के बाहर की बात है। आहाहा! परन्तु अन्दर में जो भाव, चार भाव, पर्याय के भाव, वे परद्रव्य हैं। परद्रव्य परवस्तु है। आहाहा! क्योंकि जैसे परद्रव्य में से अपनी धर्म पर्याय प्रगट नहीं होती। जैसे परद्रव्य में से शरीर, वाणी, कर्म, परपदार्थ, देव-गुरु-शास्त्र आदि में से अपनी धर्म पर्याय प्रगट नहीं होती; वैसे पर्याय में से पर्याय प्रगट नहीं होती। आहाहा! एक समय की पर्याय है, उसमें से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। उस पर्याय का तो व्यय हो जाता है। पर्याय की उत्पत्ति तो त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होती है। इस अपेक्षा से - स्वद्रव्य की अपेक्षा से उस धर्म की पर्याय को भी परद्रव्य कहा। आहाहा! गजब बात है। नरेन्द्रभाई! ऐसा कभी सुना नहीं। भाग्यशाली हो कि आया। ऐसी बात है, बापू! क्या कहें ? किसे कहें ? कहाँ कहें ? ऐसी गड़बड़ चली है... आहाहा! कि सत्य बात को मिथ्या सिद्ध करना और मिथ्या बात को सत्य सिद्ध करना, ऐसी गड़बड़ चली है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि राग दया, दान का भाव परद्रव्य है। वह तो ठीक, परन्तु उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव जो धर्मभाव... आहाहा! वह परद्रव्य है। परद्रव्य क्यों (कहा) ? कि जैसे परद्रव्य में से नयी पर्याय नहीं आती; वैसे पर्याय में से नयी पर्याय नहीं होती। नयी पर्याय तो अन्दर द्रव्य में से आती है। खजाना भरा है, उसमें से निकलती है। अन्दर भगवान का खजाना भरा है। आहाहा! लो, सुरेशभाई! कभी ऐसा सुना नहीं था कहीं ? यह पालो, यह करो, इच्छामि पडिकम्मो, इरिया वहिया तस्स उत्तरि करणेणं निस्सारि करणेणं अप्पाणं वोसिरामि। यह अप्पाणं वोसरे का क्या अर्थ है, इसकी खबर नहीं होती... आहाहा! कहा न ? लोगस्स में आता है न ? विहुयरयमला। लीमड़ी में दशाश्रीमाली और विशाश्रीमाली को विरोध था। लीमड़ी में संघवी का उपाश्रय है न ? एक सेठ का उपाश्रय था। दोनों को पहले विरोध था। बहुत वर्ष की बात है। उसमें एक स्थानकवासी महिला थी। वह सामायिक करके बैठी दो घड़ी। उसमें लोगस्स आया। उसमें विहुयरयमला आता है न ? उसमें विहा

रोई मल्या, ऐसा बोली। स्वयं दशाश्रीमाली और विशाश्रीमाली के साथ विरोध था। इसलिए उसमें विहुयरयमला की जगह विहा रोई मल्या। लोग कहे कि अपने विवाद का शब्द लोगस्स में कहाँ से आया? अपने यहाँ दशा और विशा को मेल नहीं, उसमें यह कहाँ से आया? अन्दर अर्थ तो देखो। तब कहे विहुईरयमला।

हे त्रिलोकनाथ! आपने विहुई अर्थात् टाले हैं। विशेषे हुई टाल्या, जैसे यह पंक्षी धूल चिपकी हो उसे खिरा डाले, वैसे हे नाथ! आपने आत्मा के आनन्द के स्वाद में अन्दर जाकर और इस कर्मरूपी रज को विहुई अर्थात् टाला है। वि अर्थात् विशेष हुई अर्थात टाला। क्या टाला? विहुईरयमला - रज। कर्म की रज टाली और मल अर्थात् पुण्य-पाप के भावमल टाले। वह रज जड़ है और यह मल (विकार) पर्याय में है। प्रभु! आप दोनों को टालकर मोक्ष पधारे। इसकी भी खबर नहीं पड़ती। जयनारायण! अरे रे!

यहाँ यह कहते हैं कि चार प्रकार की पर्याय में से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। पर्याय, द्रव्य त्रिकाल में से आती है। इस अपेक्षा से—स्व त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से हम पर्याय को परद्रव्य कहते हैं। परमात्मा ऐसा फरमाते हैं। परद्रव्य कहते हैं, क्योंकि उसमें से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। वह तो इस पर्याय की एक समय की स्थिति है। एक समय की स्थिति में से दूसरी कहाँ से आयी? और द्रव्य जो त्रिकाली भगवान, उस पर्याय के पीछे प्रभु आत्मा त्रिकाली अनादि-अनन्त ध्रुव है, उस ध्रुव में से पर्याय आती है। इस अपेक्षा से ध्रुव को द्रव्य कहने पर, पर्याय को परद्रव्य कहते हैं। आहाहा! ऐसी बातों-बातों में अन्तर, प्रभु! पागल कहे, हों! पागल कहे। दुनिया के साथ मेल नहीं खाये, वह तो नहीं खाये। अब तो साढ़े पैतालीस वर्ष हुए, यहाँ सोनगढ़ में साढ़े पैतालीस वर्ष तो यहाँ हुए। पैंतालीस वर्ष में आये थे। शरीर को ९१ चलता है। आहाहा! पैतालीस वर्ष से यह बात बाहर आयी है। आहाहा! खलबलाहट भी हो गया है। अफ्रीका में, लन्दन में, अमेरिका में वाचन चलता है। लन्दन में वाँचन चलता है, प्रेमचन्द नाम से एक है। आहाहा!

प्रभु! तू एक बार सुन तो सही। शान्ति से सुन न भाई! इसकी अस्ति में जो चार पर्याय है, उसकी अवधि एक समय की है। इसलिए उसमें उसे नयी पर्याय, धर्म की नयी पर्याय नहीं आती। इस कारण वह चार पर्याय, उनमें तीन धर्म की और एक अधर्म की, उन चारों को हम परद्रव्य कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? तीन बोल लिये। एक तो हेय कहा, क्योंकि?—परस्वभाव है। परस्वभाव है, इसलिए वह परद्रव्य है। आहाहा! ऐसा

कब सुना था ? बलुभाई ! परदेश में भटकते थे। आहाहा ! अरे रे ! त्रिलोकनाथ परमेश्वर, जिनेश्वर का यह माल अन्दर का रह गया। ऊपर के छिलके कूटे। आहाहा ! यह यहाँ कहा कि परद्रव्य है। विशेष बाद में कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)